International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 25-10-2022, Accepted: 11-11-2022, Published: 27-11-2022
Volume 8, Issue 6, 2022, Page No. 44-45

प्रबंधकाव्यः एक दृष्टि

डॉ. के. चन्द्रा
सहायक आचार्य, एस टी एस एन सरकारी स्नातक महाविद्यालय, कदिरि, श्री सत्य साई जिला, आंध्र प्रदेश, भारत

सारांश
प्रबंधकाव्य एक समाख्यान काव्य है। इसमे कथा अपरिहार्य रूप से होती है। प्रबंधकाव्य में कथा के साथ–साथ भावों एवं विचारों की श्रृंखलबद्ध होना भी आवश्यक है। इसमे सम्पूर्ण समाज एक इकाई के रूप में चित्रित होता है। आचार्य शुक्ल प्रबंधकाव्य के लिए रसात्मकता को अनिवार्य मानते है। किसी विषय या कथा का गद्य या पद्य में प्रस्तुतीकरण प्रबंध कहलाता था।

मूल शब्दः रसात्मकता, श्रुखलाबद्ध

प्रस्तावना

भारतीय आचार्यों ने काव्य के श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य नामक दो भेद बतलाए हैं। उनके अनुसार श्रव्यकाव्य के तीन भेद है – गद्य, गद्य और चंपू । छंदरहित रचना गद्य, छंदोबद्ध रचना पद्य और गद्य–पद्य मिश्रित चंपू कहलाती है । पद्य के भी दो प्रकार हैं – प्रबंधकाव्य और मुक्तक काव्य ।प्रबंधकाव्य में छंद परस्पर सापेक्ष होते हैं और मुक्तक काव्य में पूर्वापर संबंध नहीं होता । आचार्य विश्वनाथ ने इन दोनों का लक्षण निर्धारित करते हुए लिखा है –

"छंदोवद्धपदम पद्यम तेन मुक्तेन मुक्तकम।"

यहाँ प्रबंधकाव्य ही वर्ण्य है । अतः उस पर ही विचार किया जाएगा । भारतीय आचार्यों में कुंतक ने प्रबंधकाव्य को महाकवियों का कृतिकन्द बताया है – " प्रबंधेषू कवीन्द्राणाम कीर्ति केन्देशु कि पुनः ।" यह मुक्तक से श्रेष्ठ माना गया है। प्रबंधकाव्य की चर्चा करते हुए डॉ॰ गायत्री जोशी ने लिखा है – " संस्कृत में 'प्रबंध' शब्द का मूल अर्थ (प्र+बन्ध) (बांधना +अय) संदर्भ या ग्रंथ रचना है । आधार (कथा–विषय) पर कल्पना से ग्रंथ रचना करना भी प्रबंध कहा जाता था। दूसरे शब्दों में परंपरानुमोदन के साथ किसी विषय या कथा का गद्य या पद्य में प्रस्तुतीकरण प्रबंध कहलाता था । धीरे दृधीरे यह शब्द आख्यान या कथा के सम्यक तारतम्य पर आधारित केवल काव्य के लिए प्रयुक्त होने लगा और प्रबंधकाव्य के लिए रुद हो गया।"[2] डॉ॰ भगीरथ मिश्र ने प्रबंधकाव्य के लिए काव्यात्मकता कथा और छंदों की क्रमबद्धता को अपरिहार्य माना है – "यह पद्य रचना है जिसके अंतर्गत छंद किसी कथा सूत्रता कि व्यवस्था से पिरोये रहते हैं उनके छंदों के क्रम को बदला नहीं जा सकता।"
डॉ॰ नगेन्द्र लिखते हैं – "प्रबंध में जीवन का सवांग विस्तार तथा संपूर्ण अभिव्यक्ति रहती है, इसीलिए आनंद के अतिरिक्त काव्य के महत्वपूर्ण उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन प्रबंधकाव्य ही अधिक है ।"[4]
इन कथनों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रबंधकाव्यमें निम्नलिखित चार तत्वों का होना आवश्यक है––– कथात्मकता, काव्यात्मकता ,वस्तुवर्णन और चरित्र–चित्रण।

क) कथात्मकताः प्रबंधकाव्यएक समाख्यान काव्य है । इसमे कथा अपरिहार्य रूप से होती है । आचार्य भामह ने इसे निबद्ध काव्य कहा है । प्रबंधकाव्य में कथा के साथ–साथ भावों एवं विचारो कि श्रृंखलबद्ध होना भी आवश्यक है। इसमें संपूर्ण समाज एक इकाई के रूप में चित्रित होता है । यही कारण है कि कभी–कभी किसी प्रबंधकाव्य में जीवन–वृत्त के स्थान पर संपूर्ण जाति या समाज का ही चित्रण होता है।

ख) काव्यात्मकताः प्रबंधकाव्य एक काव्य है इसे पद्यात्मक कथाकाव्य भी कहा जाता है। पद्य इसकी पहली शर्त है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है –––" प्रबंधकाव्य में मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है । इसमें घटनाओं कि संबंध–श्रंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक–ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करनेवाले, नानाभावों का रसात्मक अनुभव करने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए । इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं किया जा सकता।"[5] इस प्रकार आचार्य शुक्ल प्रबंधकाव्य के लिए रसात्मकता को अनिवार्य मानते हैं । यह रसानुभूति कविता के माध्यम से ही कराई जाती है।

ग) वस्तुवर्णनः यह बाह्यरार्थ निरूपक है। इसमें इतिवृत्त का वर्णन होता है एल प्रबन्धकाव्य की विकासयात्रा में अब यह अंतर आया है कि भाव एवम विचार प्रधान प्रबंध काव्यों की रचना होने लगी है।

घ) चरित्र–चित्रणः इतिवृत का विकास चरित्रों को आधार बनाकर ही होता है अतः प्रबंध काव्य में चरित्रों का पूर्ण विकास होना चाहिए। पंडित रामदहिं मिश्र ने इन सबको समेकित करते हुए लिखा है –––"प्रबंध प्रकृष्टतः विस्तार का द्योतक है। प्रबन्धकाव्य जीए पद्य, प्रबंधगत कथा वर्णन के अधीन तथा परस्पर संबद्ध रहते हैं। वे सम्बद्ध रूप से अपने विषय का ज्ञान करते, भावमग्र करते एवम रस में सरोबार करते हैं।"[6]
प्रबंधकाव्य का विभाजन करते हुए आचार्यों ने इसे दो प्रधान भेद बताए हैं ––– ' महाकाव्य और खंडकाव्य ।' इनकी विशेषताओं पर आगे विचार किया जाएगा।

महाकाव्य

किसी विदा की परिभाषा देकर इसका यथावत लक्षण निर्धारित करना कठिन कार्य है फिर भी पहचान के लिए उसका स्वरूप–निर्धारण आवश्यक हो जाता है। महाकाव्य साहित्यिक विधा रही है अतः इसका सर्वकालिक लक्षण निर्धारित करना संभव नहीं है। यह युगीन चेतना को आत्मसात कर चलनेवाली एक प्रगतिशील विधा है। महाकाव्य एक सांस्कृतिक प्रयास है। संस्कृति जिस प्रकार अखंड रहकर भी युगीन विशेषताओं को आत्मसात करती चलती रहती है,उसी प्रकार महाकाव्य भी अपने मूल उद्देश्य को संरक्षित रखते हुए युगीन प्रवृत्तियों को प्रश्रय देते हुए

गतिशील रहता है। यह जातीय जीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम है। दिनकर ने लिखा है ———"विश्व के महाकाव्य मनुष्यता के प्रगति के मार्ग में मील – पत्थरों के समान होते है। वे व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहां तक प्रगति कर सका है।" महाकाव्य की इन विशेषताओं को देखते हुए इसके लिए कोई रूढ़ परिभाषा निर्धारित करना संभव नहीं है। इन सीमाओं के होते हुए भी भारतीय एवम पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य की परिभाषा निर्धारित करने का प्रयास किया है। यहां भारतीय और पाश्चात्य दोनों परंपराओं में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं का विश्लेषण किया जाएगा। भारतीय साहित्य में संस्कृत के आचार्यों ने इस पर गंभीरता से सूक्ष्म विचार किया है। यहां भारतीय आचार्यों से तात्पर्य संस्कृत आचार्यों से है। अतः यहां विश्लेषण के क्रम में संस्कृत आचार्यों की परिभाषाओं पर विचार किया जाएगा।

संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएं

संस्कृत आचार्यों में भामह प्रतिष्ठित आचार्य माने जाते हैं। उनके अनुसार "सर्गविभाजन से महाकाव्य में व्यवस्था आती है। नाटकीय संधियों एवम कार्यवस्थाओ के प्रयोग के द्वारा कथानक के विकास में क्रामबद्धता एवम काव्यात्मकता आती है। वर्णनात्मकता काव्य के लिए अनिवार्य है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चतुर्वर्ग फल प्राप्ति का विधान होना चाहिए। उससे नायक का अभ्युदय होता है,किंतु अन्य पात्रों का उत्सर्ग दिखाने के लिए नायक का वध नहीं किया जाता है।"[8] इस प्रकार 'भामह ' ने अपनी परिभाषा में महाकाव्य को उसकी संपूर्णता में समेटने का प्रयत्न किया है। आचार्य दंडी ने महाकाव्य के लक्षणों का निरूपण करते समय भामह की बातों को परिभाषा में आत्मसात किया ही है उसके बाह्य स्वरूप का विवेचन किया है।[9] परवर्ती आचार्यों के लिए दंडी की परिभाषा अनुकरणीय रही है। रुद्रट [10] एवम हेमचंद्र [11] जैसे आचार्यों ने भी अपने लक्षणों का पूर्ववर्ती आचार्यों के परिभाषाओं का आधार बनाया है। रूद्रट ने महाकाव्य के लिए महत उद्देश्य,महत चरित, महती घटना और समग्र जीवन के रसात्मक चित्रण को अनिवार्य माना है। कविराज विश्वनाथ [12] ने अपेक्षाकृत व्यापक और स्पष्ट परिभाषा दी है। उनकी परिभाषा में पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के लक्षणों का समाहार है।

विश्वनाथ की परिभाषा सर्वमान्य और सर्वांगपूर्ण है। इस परिभाषा में महाकाव्य के लिए निम्नलिखित तत्व आवश्यक बताए गए हैं –

1. कथानक् की ऐतिहासिकता
2. कथावस्तु का सर्गों में विभाजन
3. नाटकीय संधियों का निर्वाह
4. धीरोदात्त उच्च कुलीन नायक
5. श्रृंगार, वीर और शांत रसों में एक की परिपक्वता और अन्य रसों का सहायक होना ।
6. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चतुर्वर्ग की प्राप्ति
7. आठ से अधिकसर्गों की संख्या
8. सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन
9. महाकाव्य के आरंभ में नमस्कार, मंगलाचरण, आशीर्वचन आदि का विधान
10. सज्जन की स्तुति एवम दुर्जन की निंदा
11. सूर्य, प्रातः, मध्याह्न, संध्या, रजनी, प्रदोष, पर्वत, सागर, स्वर्ग, पुर, ऋतु, संयोग श्रृंगार, विप्रलंभ श्रृंगार, पुत्रोत्पत्ति, यात्रा, मंत्रणा, यज्ञ आदि का सांगोपांग चित्रण।
12. कवि, कथा अथवा नायक पर आधारित महाकाव्य का नामकरण।
13. कथा के आधार पर सर्गों का नामकरण।

इस प्रकार विश्वनाथ ने महाकाव्य की एक व्यापक परिभाषा दी है, किंतु यह परिभाषा मौलिक नहीं है इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों का दोहन किया है, किंतु व्यापकता के कारण इनकी परिभाषा समादृत रही है। अनेक कवियों ने उनकी परिभाषा को आधार बनाकर काव्य रचना की और प्रतिष्ठा अर्जित की। इससे यह परिभाषा यशस्वी हुई।

संदर्भ सूची

1. आचार्य विश्वनाथ–साहित्य दर्पण
2. डॉ. गायत्री जोशी – हिंदी प्रबंधों में जीवन दर्शन, 4
3. डॉ. भागीरथ मिश्र – काव्यशास्त्र, 48
4. डॉ. नागेंद्र – भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, 240
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल – जायसी ग्रंथावली, 68